International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 871-874

पूर्व मध्यकालीन राजस्थान की सामाजिक–धार्मिक स्थिति विभिन्न स्त्रोतो के आलेख में

सपना यादव
व्याख्याता इतिहास, राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय, छावनी, नीमकाथाना, सीकर, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

(1) 647 ई. में हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारतीय इतिहास का नया व अलग युग शुरू होता हैं जिसमें हमें बहुत सी नवीन प्रवृतियाँ देखने को मिलती है। पूर्व मध्यकाल में हम सामान्यतः 8वीं से 12वीं सदी को लेते है जिसमें प्राचीन भारत की केन्द्रीकृत सता व परम्परागत व्यवस्थाओं की जगह विकेन्द्रीकृत व्यवस्था, सामंतवाद की प्रवृति, सामाजिक परिवर्तन – जातिगत जटिलताये, नवीन जातियों का उदय बदलते धार्मिक विश्वास ले रहे थे। सामान्यतः ये ही प्रवृतियाँ हमें राजस्थान के इतिहास में देखने को मिलती है। इस समय के राजस्थान के बारे में जानकारी प्राप्त करने के हमारे पास स्त्रोंतो का भण्डार है। पुरातात्विक स्त्रोत (स्मारक, अभिलेख, मुद्रा) साहित्यिक स्त्रोतों के द्वारा हम तत्कालीन राजस्थान के इतिहास का मूल्यांकन कर सकते है।

पूर्वमध्यकाल में राजस्थान के लिए एक नाम नहीं था तथा इसकी सीमायें स्पष्ट नहीं थी। यहाँ पर विभिन्न राजपूत वंशो ने अपनी सता स्थापित की और 'राजपूत' शब्द के आधार पर ही इसका राजस्थान नाम पडा।

सामान्यतः यह धारणा बनी हुई है कि यह काल भारतीय व राजस्थान के इतिहास का पतन का काल था, जिसमें एकीकृत सता की जगह छोटे राज्य, सामतंवाद, अर्थव्यवस्था का पतन, जातिगत भेदभाव, छुआछूत व जटिलतायें, महिलाओं की स्थिति मे गिरावट थी। यह सही है कि कुछ पक्षों में हमे गिरावट दिखती है लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू भी है जिसमें हमें नवीन शक्तियों का उदय, उच्च चारित्रिक आदर्श, ग्रामीण राजनीतिक जागरूकता, कायस्थ वर्ग के रूप में एक लेखक वर्ग का उदय देखने को मिलता है। विभिन्न स्त्रोतों से हम लेख में नकारात्मक अवधारणा पर पुनर्विचार कर इस समय की सकारात्मक प्रवृतियों पर प्रकाश डालेंगें।

(2) पूर्वमध्यकालीन राजस्थान में नवीन राजपूत वंशो का उदय हुआ जिन्होनें अपने–अपने राज्य स्थापित कर शासन किया। युद्धप्रिय राजपूत जाति का उदय व राजपूत राज्यों की स्थापना इस काल की सबसे महत्वूपर्ण घटना हैं[1]। हर्ष व यशोंवर्मन की मृत्यु के बाद राजस्थान में अराजकता की स्थिति आ गई। इस अराजक स्थिति के समाप्त करने व शक्ति की शून्यता को भरने का काम इन राजपूत वंशो ने किया। इनके उदय पर विद्वान एकमत नहीं है तथा विभिन्न साहित्यिक स्त्रोतों व अभिलेखों से ही इस बारे में जानकारी मिलती है। जैसे कवकुक के घटियाला लेख से प्रतिहारों की उत्पति के बारे में, [2] सेवाडी से प्राप्त महाराणा रत्नपाल के ताम्रलेख[3] से चौहान वंश के विषय में, चन्दरवरदायी की पृथ्वीराज रासो से चार वंशो – प्रतिहार, परमार, चालुक्य, चौहान का अग्निकुण्ड से उत्पति बताया गया है। [4] प्रारम्भिक राजपूत कुलो में मारवाड के प्रतिहार और राठौड, मेवाड के गुहिल, सांभर के चौहान, चित्तौड के मौर्य, भीनमाल तथा आबू के चावडा, आम्बेर के कछवाह, जैसलमैर के भाटी आदि प्रमुख है।

पूर्वमध्यकालीन राजस्थान का समाज

विभिन्न स्त्रोत सामग्री – शिलालेखों, मूर्तिखण्डों एवं साहित्य ग्रन्थों के आधार पर हम तत्कालीन समाज रचप, स्त्रियों की स्थिति, वेशभूषा, ग्रामीण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, भोजन, मनोरंजन, भाषा–लिपि का अध्ययन करेगें।

पूर्वमध्यकाल को राजस्थान के शिलालेखों व धर्मग्रन्थों में चार वर्णों – ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा चार आश्रमों का ब्रम्हचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास का उल्लेख मिलता है। लेकिन इस समय इस परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में बहुत से परिवर्तन हो चुके थे। वर्ण कार्य, स्थान आदि के आधार पर जातियों में बंट गये थे, समाज में सबसे ऊँचा स्थान ब्राम्हणों का था। ब्राम्हण की खान–पान, संपर्क ज्ञान आदि के आधार पर ऊँच–नीच में बटे हुए थे। स्कन्द पुराण विक्रम 982 के पुष्कर–1 शिलालेख, कान्हडदे प्रबंध आदि से पंचगोड, पंचद्राविड, पुष्करणा और श्रीमाली ब्राम्हाणों का बोध होता है जो ब्राम्हणों में श्रेष्ठ माने जाते थे। इनका खान–पान, आचार–विचार रहन–सहन अन्य से भिन्न होते थे। [5] भोजक से अन्य ब्राम्हण कम सम्पर्क रखते थे। [6] नागर व श्रीमाली अध्ययन–अध्यापन में ऊँचा स्थान रखते थे। [7] नाडौल, जालौर, चन्द्रावती, गोडवाड आदि स्थानों पर जैन प्रभाव अधिक होने के कारण ब्राम्हणों का महत्व कम था। [8] इन ब्राम्हणों में कुछ अध्ययन से, कुछ राजकीय सेवा से और कुछ व्यापार से अपनी जिविका चलाते थे। पल्लीवाल ब्राम्हण पुरोहिती व्यापार में कुशल होते थे। क्षत्रिय वर्ण के कार्य को राजपूत जाति ने अपना लिया था और ये प्राचीन क्षत्रिय आदर्शो का अनुसरण करते थे। देश की रक्षा करना, युद्ध करना, निर्बल की रक्षा करना इन्होंने अपने कर्तव्य निश्चित किये थे। जिन जातियों ने व्यापार – वाणिज्य, कृषि कार्य को अपनाया वे वैश्य कहलायें। इनका मांसाहारी न होना और व्यापार में लगना वैश्य संस्था का परिचायक हुआ। अग्रवाल, माहेश्वरी, जैसवाल, खण्डलेवाल, ओसवालों का उदभव क्षत्रियों से हुआ [9] वैश्य जातियॉ अपनी समृद्धि के लिए जानी जाती है। विमलशाह, वास्तुपाल, तेजपाल जैसे कुछ नाम अपनी समृद्धि व राज सेवा के लिए प्रसिद्ध है। दस्तकारी व खेती में लगी कुछ जातियाँ – कुम्हार, माली, तेली, नाई, लुहार, सुनार, तम्बोली, दर्जी, गडरिया, ठठेरा, आकीर आदि शुद्र की श्रेणी में आती थी। समाज में इनकी स्थिति खराब नही थी। इन चार वर्णों की जातियों के अलावा कुछ जातियाँ जिन्हें अधम और अधमाधम कहा गया, जो अंत्यज की श्रेणी में आती है। इनमें भील, डोम, मच्छीमार, व्याध, धोबी, चिडीसार, चाण्डाल, नट, जुलाटे, चमार आदि है। इनकी स्थिति सामाज में बडी दयनीय थी। इन्हें गॉव से बाहर रखा जाता था तथा सार्वजनिक लाभ से

इन्हें वंचित रखा जाता था। इसके अलावा 'मलेच्छ' शब्द भी आता है। यह विदेशी जातियों तथा वे स्थानीय व आदिवासी जिन्होंने राजपूतों से संघर्ष किया जैसे भील, मीडे–मेड जाति, कबर को रखा गया। भीनमाल और मेवाड से भील और मेडो के रहने व राजपूतों से संघर्ष का जिक्र आता है।

चन्दरवरदाई राजपूतों की 36 शांखाओं का उल्लेख करता है। राजपूतों की कई ऐसी जातियों का उल्लेख मिलता है जिसका वर्तमान में अस्तित्व नही मिलता है। ये जातियाँ या तो लुप्त हो गई या इनका स्वरूप पूर्णतः बदल गया। पाल के सती स्मारक अभिलेखों में इस प्रकार की जातियाँ मिलती है। इस काल में राजस्थानी समाज में एक नये वर्ग का अस्तित्व ज्ञात होता है जो परम्परागत समाज का हिस्सा नहीं रहा और यह है – कायस्थ वर्ग। वृहत कथाकोष में इस जाति को लेखक कहा है और बताया है कि इनकी असावधानी से राज्य को हानि हो सकती है। 1 विग्रहराज चतुर्थ के शिलालेखों को गौड कायस्थ ने लिखवाया था।

पूर्वमध्यकाल के स्त्रोतों से हमें ग्रामों एवं नगरों का वर्णन मिलता है जिससे ग्रामों व नगरो की बसने की योजना, वैभव का ज्ञान होता है। उदहारण के लिए नाडछोल से प्राप्त संवत् 1198 वि. के अभिलेख [11] से पता चलता है कि धालोप गाँव अलग–अलग वाडों (वार्डो) में विभाजित था। इन वार्डों के मेरीवाडा, डीपावाडा, पीपलवाडा आदि के नाम दिये गये है। इसी प्रकार चौखे ग्राम (उदयपुर) में उपलब्ध संवत 1330 के अभिलेख से हमें चीखा ग्राम की स्थिति और बसी हुई दशा के बारे में पता चलता है। गाँव किस प्रकार पर्वतों, घाटियों, वृक्षों से घिरे रहते थे, तालाबों व खेतों की स्थिति, ग्रामीण जीवन, मंदिर का ग्रामीण जीवन में महत्व जैसी बांतो का इस अभिलेख द्वारा अच्छा बोध होता है। रसिया की छंत्री अभिलेख से देलवाडा और नागदा नगरों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है।

इसी प्रकार नाडोल के सन 1141 ई. के अभिलेख [12] से से ग्रामो में शांति व सुरक्षा के विषय में ज्ञात होता है कि धालोप ग्राम को आठ वार्डो में बांटकर प्रत्येक से दो–दो ब्राम्हणों का चुनाव किया गया। इन प्रतिनिधियों के मण्डल का मध्यक पीपलवाडा से निर्वाचित देवाइच को बनाया गया। इन्होनें निश्चय किया कि गाँव के पंच चौरी का पता लगाने में सहयोग देंगे। इस निर्णय पर ग्रामवासियो की साक्षी भी दी गई है तथा यह लेख ग्रामवासियों की इच्छा पर कायस्थ ठाकुर पेथड ने लिखा है कि इससे ग्राम के लोगों को अपनी

व्यवस्था के प्रति जागृति व चेतना देखने को मिलती है। इसकी हमारी स्थानीय स्वशासन के ग्राम पंचायत से तुलना (समानता) हो सकती है तथा शेरशाह के सुरक्षा के लिए स्थानीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त की थोडी सी पूर्व झलक मिलती है।

मध्यपूर्वकाल में महिलाओ की स्थिति

प्राचीन काल से हमारे समाज में महिलाओं का सम्मानजनक स्थान रहा है उन्हें पुरूष की अर्द्धांगिनी के तौर पर समाज के हर कार्य में सम्मिलित किया जाता था। लेकिन सांस्कृतिक वातावरण, पारिवारिक संरचना व अन्य कारणों से महिलाओं की स्थिती में गिरावट आती चली गई। मध्यपूर्वकाल में बहुपत्नी प्रथा, सती प्रथा, कन्या के जन्म पर दुखः व्यक्त करना जैसी प्रथाओं से पता चलता है कि इस समय नारी की स्थिति कमजोर हो गई थी। उन्हें सम्पति आदि के अधिकार नहीं थे। इस समय बहुपत्नी व्रत के अनेक उदाहरण मिलते है, गहडवाल राजा गोविन्दचन्द्र की चार पत्नियाँ थी तथा गोगादेव चेदी की सौ स्त्रियॉ थी। उस संबध में उल्लेख मिलता है कि राजा सभी को प्रयाग लेकर गया और वहाँ उसके मरने पर स्त्रियाँ सती हो गई। ज्ञानपंचमी कथा '' तथा उपमिति [12] से ऐसे उल्लेख मिलते है कि अधिक संख्या में पुत्रियों का होना नरक में रहने के समान समझा जाता था। राजपरिवारों मं इस काल में सती के भी गई उदाहरण मिलते है वि. स. 977 के घटियाले के लेख से सावलदेवी के सती होने का उल्लेख है। [13] इस काल में पुनर्विवाह, नियोग तथा बिमाता से पेदा होने वाले दोषो का भी जिक्र मिलता है। लेकिन दूसरी ओर इस समय भी बहुत सी विदुषी महिलायें जैसे – भोज की रानी अरूधंती, राजशेखर की पत्नी अवन्तिसून्दरी के उदाहरण मिलते है। बहुत सी वीरांगनायें जिन्होंने कठिन समय में शासन को व युद्ध में अपना नेतृत्व दिया, उदाहरण के लिए – पृथ्वीराज चौहान की माता कर्पूर देवी उसकी संरक्षिका बनी व मूलराज की माता नाईकी देवी ने मोहम्मद गौरी के खिलाफ आबू के युद्ध का नेतृत्व किया। लेकिन ये उदाहरण उच्च परिवारो की कन्याओं के ही है आम महिलाओं की स्थिती बहुत अच्छी नही थी।

इस समय जातिगत जटिलतायें आने से अन्तर्जातिय विवाह नहीं होते थे। सगोत्र व सप्रवर विवाह नहीं होते थे जो आज भी प्रचलित है। अनुलोम–प्रतिलोम की सामान्यतः नही होते थे लेकिन अपवाद स्वरूप इन सबके उदाहरण हमें मिलते है। मण्डोर का हरिशचन्द्र ब्राम्हण प्रतिहार और राजपूत प्रतिहारों का मूल पुरूष माना जाता है। ब्राम्हण कवि राजशेखर ने चौहान कन्या से विवाह किया था। [14] विवाह संस्था शास्त्रीय नियमों और प्रथाओं से मर्यादित थी, परन्तु उच्च वर्ग में कभी–कभी स्वयंवर भी होते थे। जयचन्द की पुत्री संयोगिता के स्वयंवर का उदाहरण मिलता है।

पूर्वमध्यकालीन राजस्थान के समाज का भोजन, वेश–भूषा, आभूषण व अन्य पक्ष

इस समय के राजस्थान की समृद्धि का पता यहाँ के लोगो के पहनावें, खाद्य पदार्थो की बहुलता से प्रकट होता है। भोजन शाकाहारी व मांसाहरी दोनो प्रकार का होता था। विभिन्न अनाज, दूध, फल, मसालों का प्रयोग किया जाता था। साधारणतः भोजन आसन पर चटाई पर या भूमि पर बैठकर खाने की प्रथा थी। कपडो में पगडी, धोती, अंगरखी तथा दुपट्टे का प्रयोग होता था। स्त्रियॉ साडी, अधोवस्त्र, स्तनपट्ट और आंगी पहनती थी जो रेशम व सूत के होते थे [15] आभूषणों मे पुरूष कुण्डल, मुकुट, हार, केयूर, पहनते थे तथा स्त्रियॉ कुण्डल, हार, बाजूबन्द, कर्धनी, नुपूर, चूडारत्न, माला आदि आभुषण धारण करती थी। इस समय समाज में देवशनी एकादशी, जन्माष्टमी, भीज्म पंचरात्रि, शिवरात्रि, गोरितृतीय, महानवी आदि धार्मिक पर्व मनाये जाते थे। गूजरीयात्रा, दीपोत्सव, रथयात्रा आदि जैनियो के बडे उत्सव थे। रास का नाच गॉवो में बडे चाव का मनोरंजन गिना जाता था[16]।

पूर्वमध्यकालीन शिक्षा व साहित्य की स्थिति

शिक्षा का साहित्य की दृष्टि से यह युग समृद्ध था, इस युग में संस्कृत व स्थानीय भाषाओं का पर्याप्त विकास हुआ, जहॉ यूरोप में स्थानीय भाषाओं को साहित्य में स्थान पुनर्जागरण (14 वी 15वीं सदी से) के काल से मिलने लगा, वही भारत में स्थानीय भाषाओं में साहित्य 9 लेख प्राचीन काल से ही अविरल चलते रहे है और स्थानीय भाषायें समृद्ध होती रही है हालांकि उच्च कुलीन वर्ग की भाषा संस्कृत को ही माना जाता रहा है। शिक्षा का स्तर ऊँचा था, यह हमें इस समय के शिलालेखो व साहित्यक कृतियों से स्पष्ट विदित होता है हांलाकि शिक्षा से आम जन कम ही जुडा हुआ था।

शिक्षा मौखिक होती थी। शिष्य गुरू के चरणों में बैठकर वेद, धर्म, पुराण, ज्योतिष, गणित, साहित्य व्याकरण आदि विषयों में ज्ञान प्राप्त करते थे।

इस समय के मिले शिलालेखों – विक्रमी सं 8वीं का अपराजित का शिलालेख, 971 ई. का नाथों का लेख, विग्रहराज चतुर्थ के लिखे नाटक, उनकी 'कवि बान्धव' उपाधि इस समय की रचनाओं – सोमदेव का ललित विग्रह राज उघोतन सूरी की कुवलयमाला, समराईच्छाकहा, उपमितिभवप्रपंच कथा, आदि ग्रन्थ से हमें उस समय के शिक्षा व साहित्य की उन्नति का पता चलता है। इस समय की समृद्ध शिक्षा का अंदाजा इसी से लगा सकते है कि अकेले भीनमाल से ही माघ, मण्डन, माहुक, धाइब्लू, ब्रम्हागुप्त आदि प्रतिष्ठित विद्वान निकले थे। चौहानों के राज्य में विद्वानों की रहने की अलग ब्रम्हपुरी थी।

इस सबके होते हुए भी इस समय के साहित्य में मौलिकता, निष्पक्षता कम दिखाई देती है तथा ज्योतिष, गणित, के अध्ययन की गति में अवरोध दिखाई देता है। लेकिन इन अवरोधो के अतिरिक्त शिक्षा साहित्य की समृद्ध धारा अविरल बह रही थी। वह ऐसा युग था अनेक ग्रन्थ अनुदित किये। भारतीय पंडित मध्य एशिया, नेपाल, तिब्बत, चीन में जाकर अपने ज्ञान का प्रकाश फैलाया है जिनको भारत में आक्रमणकारियो ने नष्ट कर दिये थे।

सरकारी अभिलेखों एवं सिक्को के लेखों में बहुधा संस्कृत व स्थानीय भाषा का ही प्रयोग होता था।

पूर्वमध्यकालीन राजस्थान की धार्मिक स्थिति

इस समय राजस्थान में वैदिक धर्म की प्रवृतियाँ, पौराणिक हिंदू धर्म के देवता व जैन धर्म के प्रमुखतः दिखाई देते है। इसके साथ ही हठयोग, तंत्र–मंत्र में विश्वास, पशुपत और पंचरात्र इस युग की धार्मिक पद्धति में मुख्य रूप से शामिल हो गये थे। धार्मिक जीवन की जानकारी हमें पुरातत्व (मंदिर, मूर्तियों, सिक्के, अभिलेख) व साहित्य से प्राप्त होती है। इस समय चित्तोड, औसियॉ, पुष्कर, आहड, भीनमाल, जावर, आम्बानेरी आदि कस्बों में कई शिव, विष्णु, महावीर, वराह आदि देवी–देवीताओं कें मंदिर बनवाये गये। अनेक जैन मंदिर बने। बौद्ध धर्म का प्रभाव काफी कम था। जनता तीर्थयात्रा, स्वर्ग व नरक में विश्वास करती थी, अंधविश्वास भी प्रचलित थे।

अभिलेखों व अन्य स्त्रोतों से जैन धर्म के विस्तार एवं उन्नति के संबध में पर्याप्त सूचनायें मिलती है। पर्याप्त जैन मंदिर बनवाये गये जो अधिकांश लेखयुक्त है। शक्तिकुमार के 977 ई. के शिलालेखों में आहड के जैन मंदिर तथा सूर्य मंदिर के बनाये जाने का उल्लेख है। विग्रहराज चतुर्थ के समय में जैन विहार के बनाये जाने का प्रमाण उपलब्ध है।

राजस्थान में पौराणिक हिंदू धर्म अत्यधिक प्रचारित रहा है। विभिन्न जातियों स्त्रोतों से हमें हिंदू धर्म के अस्तित्व का पता चलता है गुप्तकाल में जो मंदिर निर्माण परम्परा शुरू हुई व इस समय काफी विकसित थी। धोसुण्डी अभिलेख जो राजस्थान में प्राप्त प्राचीनतम अभिलेखो में है में वैष्णव धर्म व वासुदेव का अश्वमेघ यज्ञ व नारायण वाटक के निर्माण का उल्लेख मिलता है। 18

बुचकला (जोधपुर) शिव तथा विष्णु मंदिर अभिलेख के अनुसार नागभट्ट के स्वविषय में सन 815 में निर्मित हुए। मुण्डाना (जोधपुर) में 825 ई का शिव मंदिर बना। शिव के साथ गणेश, कार्तिकेय की मूर्तियॉ मिलती है। पीपला माता ओसियां में गणेश, कुबेर के साथ महर्षि मर्दिनी की मूर्ति है। शैव अभिलेखों को भगवान शिव को जो अभिवादन करते हुए प्रारम्भ किया गया है। उदाहरणार्थ संवत 742 वि. के मण्डोर अभिलेख का आरम्भ ''ऊँ नमः शिवाय'' से किया है। 19 इसी प्रकार शंकर घट्टा अभिलेख के आरम्भ में शिव की वन्दना की गई है। कल्याणपुर लेख में ''ऊँ स्वस्ति प्रणम्य शंकर कर चरण मनः शिरोभिः'' शब्दो से शिव की स्तुती की गई है।

वैष्णव अभिलेखों का प्रारम्भ विष्णु के विभिन्न नामो वासुदेव, मुरारि, कैटभारिपु, आदिवराह, वराह, आदि से होता है। इनके साथ ही शक्ति की उपासना भी यहाँ प्रारम्भ से ही होती रही है। जगत का देवी का मंदिर इसी काल का है। संवत 1056 के किणसूरिया अभिलेख में कात्यायनी, काली भगवती आदि देवी स्वरूपों की स्तुति की गई है। [21] कई जगह अनेक देवताओं का उल्लेख एक साथ मिलता है। प्रतापगढ से प्राप्त एक अभिलेख में सूर्य, दुर्गा, शिव आदि देवताओं की स्तुति की गई है। चित्तोड का सूर्य मंदिर सूर्य की अराधना के प्रचलन का घोतक है।

निष्कर्षतः

कह सकते है कि इस समय सभी सम्प्रदायों को विश्वास और पूजा पद्धति की पूर्ण स्वतंत्रता थी। इसी कारण जैन आचार्य शैव व वैष्णव मत के राजाओं के राज्य में अपने धर्म का प्रचार करते थे। धार्मिक कट्टरता की जगह सहिष्णुता की भावना थी। जैसे मेवाडा के शासक शैव मतावलम्बी होते हुए भी चित्तोड में वैष्णव व जैन मंदिर बने है। राजपूत शासकों ने सभी धर्मों को संरक्षण प्रदान किया। सहिष्णुता की भावना भारतीय जनता व संस्कृति में रची–बसी हुई है।

अध्ययन से स्पष्ट है कि इस काल में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण व सामंतवाद की प्रवृति होते हुए भी सभी शासको ने अपनी–अपनी सीमा, शक्ति व सामर्थ्य से कला, साहित्य, धर्म, शिक्षा, व्यापार, को समृद्ध बनाया जिसका प्रमाण हमे सिक्कों के प्रचलन विभिन्न कलात्मक स्मारकों के निर्माण, विभिन्न प्रतिष्ठित विद्वानों व रचनाओं की उपलब्धता व अभिलेखों से प्राप्त होता है। स्त्रोतों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने से इस समय के इतिहास की सकारात्मक प्रवृतियॉ सामने ला सकते है।

संदर्भ

1. गोपीनाथ शर्मा 1N 25
2. जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी 1895 पृ. 516
3. एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड 11, पृ. 38
4. गोपिनाथ P.N. 29
5. स्कन्दपुराण, सहयादी खण्ड, श्लो 2–3., इ.ए., भा.श, पृ. 71, प्रो. रि. आ.स.वे.स. 1909–1910 गोपीनाथ शर्मा P.N. 114
6. दशरथ शर्मा, रा. भू. ए. भाग प्रथम पृ. 444
7. राजस्थान थ्रू दि एजेज पृ. 444, जिनेश्वर कथाकोष प्रकरण, कथा संख्या 32
8. जिनेश्वर कथाकोष प्रकरण कथा स. – 32, गोपीनाथ शर्मा स. राज. स्टडीज, जयपुर 1965–66 पृ 1–10
9. गोपीनाथ शर्मा P.N. 116
10. वृहत कथा कोष 15, 19, 25 भण्डारकर इन्सक्रिशन्स न0 18
11. एंपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड 9, पृ 159, खण्ड 11, पृष्ठ 39 छुआछूत की भावना जातियो में विघमान थी। ब्राम्हण अन्य जातियों का भोजन या जल नहीं ग्रहण करते थे। जो लोग चाण्डाल का पानी पीते थे उनके लिए प्रायश्चित का विधान स्मृति ग्रन्थो में पाया जाता है।
12. ज्ञानपंचमी कथा, 4, 72
13. उपमिती, पृ. 698,

14. गोपीनाथ शर्मा पृ 118, सती प्रथा मात्र क्षत्रियों में ही नही थी, वरन् बाम्हणों व वैश्यों में भी प्रचलित थी, यह भी उल्लेखनीय है कि सती केवल पति की मृत्यु पर ही नही वरन पुत्र की मृत्यु पर मॉ सती हो जाती थी। इस प्रकार एक सती स्मारक अभिलेख सिंघोडिया की बारी, जोधपुर में उपलब्ध है। सतियों की संख्या से बहुपत्नी विवाह की प्रथा व उपपत्नियों (पासवाना) के अस्तित्व की प्रथा का ज्ञान होता है।
15. गोपीनाथ शर्मा 118
16. राजस्थान थ्रू दि एजेजे पृ. 452–65, गोपीनाथ शर्मा पृ. 119
17. राजस्थान थ्रू दि एजेजे पृ. 468–71, गोपीनाथ शर्मा पृ. 119
18. राजस्थान थ्रू दि एजेज पृ 414–26, गोपीनाथ शर्मा, राज का इतिहास पृ 121
19. एपीग्राफिया इण्डिका खण्ड 14, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1983 पृ. श
20. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आर्कियोलॉजिकल।
21. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री खण्ड–35, भाग–1, पृष्ठ 73–74
22. ओमा, बांसवाडा राज्य का इतिहास, पृ 38 डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ 55।